P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-6 * (Part-1) February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

नैतिकताः निर्मिति और स्वरूपः रस की दृष्टि से

कविता त्यागी
एसासिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ, भारत

सारांश

कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसमें उपदेश न दिए गए हों और कोई उपदेशऐसा नहीं है जिसमें नैतिकता विद्यमान न हों। न तो शुभ और अशुभ की कसौटियों की कमी है। और नहीं उन्हें लेकर धर्मोपदेश देने वालों की। किन्तु मनुष्य का आचरण आज तक धर्मानुकूल नहीं हो पाया।[1] तो क्या शुभ और अशुभ को, उनके अंतर को, जान पाना पर्याप्त नहीं होता? बिल्कुल नहीं। इस संदर्भ में हम बैक्ट क्लीयर से पूर्णतः सहमत है कि ''यदि शुभ और अशुभ के अंतर को पहचान पाना पर्याप्त होता तो देश के सभी कारवास बंद दिखाई पड़ते। वास्तव में विश्व के महान आश्चर्यों में से यह भी एक हैं कि सब कुछ जानते–पहचानते हुए भी व्यक्ति धर्माचरण नहीं कर पाता।[2] तो फिर क्या किया जाए? इस समस्या के लिए हमें उन कारणों तक पहुंचना होगा जो नैतिकता को सुग्राह्य नहीं बनने देते।[3]

मुख्य शब्द : शुभ और अशुभ, सुग्राह्य, नैतिकता।

प्रस्तावना

नैतिकता या धार्मिकता के सुग्राह्य रूप तक न पहुंच पाने का मुख्य कारण है कि चिन्तकों को नैतिकता के नियामक सहीं स्त्रोतों तक न पहुंच पाना, परिणामस्वरूप नैतिकता या धर्मिकता के नाम पर अतिवादी स्वप्नों की वृष्टि होने लगना।[4] ऐसे आदर्शों का सामने आना जो वास्तविकता से छिटके हए हों, जो कभी तो एक ओर कभी दूसरे अतिवाद की ओर बढ़ गए हों, जो कभी घोर व्यक्तिवाद का और कभी घोर सरकारवाद का समर्थन बन गए हों, जो कभी जीवन के सहज रूपव्यष्टि और समष्टि के संगम को लक्ष्य न कर सकें। यह कारण है कि हमारे यहां के यम–नियम और बाईबल के दस में से नौ आदेश निषेधात्मक है। वास्तव में अतिवादी स्वप्नों की ओर बढ़ने में श्रम भी नहीं करना, पड़ता। ''वास्तविकता से जितने छिटके, आदर्श उतना ही ऊँचा।''[5]

विकल्प की ललक हानि–लाभ

मानव स्वभावतः यथार्थप्रिय है, कल्पना में विचरण करने वाला तो उसे बना दिया जाता है। कभी स्वर्ग का, कभी किसी अन्य धार्मिक उपलब्धि का और कभी मानव–जीवन की दुर्लभता आदि का लालच देकर उसके विवेक को कुंठित कर दिया जाता है। किन्तु यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है। मनुष्य इन छलावों में आता क्यों है? [6] निश्चय ही छलावों में जादुई शक्ति होती है। किन्तु यह तो मात्र अर्द्ध सत्य है शेष की ओर ध्यान जाना चाहिए। मानव–मन में एक अन्य प्रवृत्ति पलती रहती है। वह सहज प्रवृत्ति के स्तर की होती है। यदि चाहेंतो उसे नाम भी दिया जा सकता है। विकल्प की ललक। ''वास्तव में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके मन में जीवन का कोई अन्य रूप भी पलता रहता है और अवसर हाथ आते ही व्यक्ति उस ओर बढ़ जाता है।'' छलावों के लिए अपेक्षित आधार यही प्रवृत्ति जुटाती है। किन्तु यह भी अर्द्ध सत्य है। यह प्रवृत्ति नैतिकता की निर्मिति में सहायक भी सिद्ध होती है। आगे उसकी चर्चा आएगी।[7]

मूलाधारः समष्टि भावः

अब जानना यह रह जाता है कि नैतिकता के मूलाधार हैं क्या? क्या उन चिंतको तथा साहित्यकारों की दृष्टिपहुंच सकी है, यदि व्यर्थ के उहापोह से बचा जाए तो प्रिंस क्रोपाटकिन की शब्दावाली में कहेगें कि सर्वप्रकार की नैतिकता का यहां तक कि निषेधात्मकता तक का मूलाधार है।[8] समष्टि भाव (SOCIALITY)। सौहाद्र, न्याय और नैतिकता–विकास के सहज चरण यहीं है, और वे मानव–मन में विद्यमान समष्टि भाव के सर्वथा अनुकूल हैं। वे सहज प्रवृत्ति के स्तर के रूप में पलते और बड़े होते है। ''समष्टि भाव के अर्थात

सौहार्द्र, न्याय तथा नैतिकता के असंतुष्ट रह जाने पर व्यक्ति अपने ही विरूद्ध हो जाता है।'' वास्तव में अवचतन या अचेतन में मात्र आक्रामक प्रवृतियों ही नही रहती उनके साथ–साथ अनेक ऐसी प्रवृतिया भी पलती और बड़ी होती रहती हैं जो आगे चल कर उत्कृष्ट कोटि की नैतिकता को जन्म देती है। व्यक्ति को नैतिक बनने के लिए बाध्य कर देती है।[9]

एक अन्य दिशा से विचार किया जाए तो चित्र एकदम स्पष्ट हो जाता है। समिष्ट भाव या सामाजिकता की अवहेलना के दुष्टपरिणाम प्रलयंकारी होते है। समष्टि की अवहेलना ऐसी व्यवस्था को जन्म देती है जो गर्हित और त्याज्य होती है। उसका सब से बड़ा उदाहरण है हिन्दू समाज में विद्यमान जातिवाद।[10] सिद्धान्त हिन्दू मनीषा भले ही बेजोड़ ठहरे किन्तु व्यवहार तक आते–आते वह लड़खड़ा ही जाती है। उसका पर्यवसान घोर जातिवाद में होता है। वह पैशाचिक बन जाती है। हिन्दुओं की इस नैतिक दृष्टि पर विदेशियों ने बार–बार कटाक्ष भी किया है।[11]

तो फिर व्यक्ति को अनैतिक या नैतिक क्यों कहा गया? उसे घोर व्यक्तिवादी क्यों सिद्ध किया गया। नैतिकता को आरोपित क्यों माना गया? मात्र बौद्धिक प्रत्यय क्यों कहा गया? व्यक्ति के अर्द्ध चेतन या अचेतन को पाशविक वृत्तियों को आगार क्यों बताया गया? इन सभी प्रश्नों का उत्तर एक हैं यह सब एक घटना विशेष के कारण हुआ। बुद्धिवादीवर्ग के लिए चार्ल्स डार्विन का अर्विभाव एक घटना थी, महान घटना। किन्तु विद्वान डार्विन की स्थापनाओं से छिटक गए। उसके मत के सांगोपांग रूप तक नहीं पहुंच सकें। एकांगी रूप पर ही अटक गए। परिणाम स्वरूप, स्वच्छन्दता को ''सहज'' का पर्याय माना गया।[12]

सर्वप्रकार की सभ्यता–संस्कृति को व्यर्थ का बोझ कहा गया। उसके समर्थन में अनेकानेक कबीलों को तथाकथित ''मुक्त'' जीवन व्यतीत करते दिखाया गया। किन्तु यह स्थिति अधिक देर तक नहीं चल सकी। चल भी नहीं सकती थी। मनुष्य को शीघ्र ही पता लग गया कि व्यक्ति न तो मात्र ''व्यष्टि'' है और न ही ''समष्टि''। मात्र व्यष्टि का पर्यवसान व्यक्ति वाद में और मात्र समिष्ट का सरकारवाद मे होता है।[13]

ये दोनों स्थितियां अधूरी है और इसलिए त्याज्य है। मानव व्यक्ति भी है और उसका यह रूप अर्थात् व्यक्तित्व का अनूठापन आकर्षण का केन्द्र भी सिद्ध होता है। किन्तु कवल उस पर अटक जाना हानिकारक सिद्ध हो सकता है। एकदम संद्यातक किन्तु व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व से वंचित भी नही किया जाना चाहिए। विश्वबंधुत्व आदि सही तो हैं, किन्तु मात्र उन्हीं तक सीमित रह जाना अधिक दूरी तक आकर्षण का केन्द्र नहीं बन पाता। वे सरकारवाद पर आकर रूकते है। उनका दुष्परिणाम भी हम देख चुकें है साम्यवाद और रूस का विखण्डन। ''वास्तव में व्यष्टि और समष्टि एक–दूसरे के विरोधी दिखते हुए भी एक–दूसरे के पूरक है।'' जीवन का वास्तविक रूप इन्हीं दोनों के बीच कहीं पलता है।''[14]

मूलाधारः विकल्प की ललक

नैतिकता का नियामक दसरा तत्व है–विकल्प की ललक (AUTISM) जैसा कि पहले कहा जा चुका हैं विश्व में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसमें विकल्प की ललक पाई जाती है। दूसरे प्रकार की शब्दावली में कहेगें कि किसी घटना के अन्य प्रकार से घटित होने की संभावना मानव–मन में ही जाग पाती है। यही संभावना धीरे–धीरे विकल्प बन जाती है। अलग से स्वप्न–लोक का निर्माण होने लगता है। व्यक्ति उसमें रम जाता है। इस स्वप्न लोक को संतों तथा भक्तों ने ''मनोराज्य'' का नाम दिया है और उसका उल्लेख बार–बार किया है। देखने की बात यह हैं कि यह स्वप्न लोक या मनोराज्य, अपन में पूर्णतः नैतिक होता है। अधिकांशतः निवृतिमूलक नैतिकता पर आधारित। संतों तथा भक्तों ने अपनी वाणी में जिस मनोराज्य को स्थान दिया, वह इसी कोटि का है। किन्तु यह दृष्टि धीरे–धीरे लोकोत्तर रूप धारणकरने लगती है। परिणामस्वरूप, यथार्थ से कट जाती है।[15]

यही इसकी हार है। किन्तु फिर भी इस तथ्य को नहीं झुठालाया जा सकता कि विकल्प की ललक के बिना भी जीवन जीने योग्य नहीं लगता। भले ही वह दुर्बलता हों, किन्तु है अनूठी दुर्बलता''।[16]

मूलाधारः अकारण भय

नैतिकता का नियामक अर्थात् नैतिकता को सहज की ग्राहय् रूप प्रदान करने वाला तीसरा तत्व है। अकारण भय। अकारण भय मानव–मन में बड़ी दूरी तक स्थित रहता है। इससे कोई बच नहीं पाता। बिना किसी कारण के डरना। मनोरथों की निरन्तर पूर्ति के समय किसी अनहोनी के घटित होने की कल्पना से डरना। हर्षोतिरेक के समय अघटित के घटित होने की कल्पना से भयभीत हो उठना। किन्तु वह अपराधबोध की देन नहीं होता। वह, वास्तव में ही अकारण होता है।[17]

मनोवैज्ञानिकों ने उसे, अलग से एक नाम दिया है। ग्रीस के किसी पौराणिक पात्र के नाम पर उसे ''पालिक्रीटीज काम्पलैक्स'' (Polycrates Complex) कहा है। कवियों ने उसका दुरूपयोंग भी खूब किया है। उच्छखला तथा अहमन्यता को रोकने के लिए आचरण की पवित्रता तथा मानसिक अनुशासन पर बल देने के लिए बार–बार उसका उल्लेख किया है।[18]

मूलाधारः आत्म–गौरव की अनुभूति

नैतिकता का चौथा नियामक तत्व है– आत्म गौरव की अनुभूति। विद्वानों ने व्यक्तिव की सुदृढ़ता के लिए सर्वाधिक उपयोगी इसी को माना है। इसके कुंठित हो जाने पर व्यक्ति दुर्बल हो जाता है।[19]

उसे कोई भी व्यसन, कुटैव तथा दुष्प्रवृत्ति दबोच सकती है। आत्म गौरव को जगाने के लिए साहित्यकारों ने एक युक्ति का बार–बार प्रयोग किया है। मानव जीवन की दुर्लभता का उल्लेख करना। व्यक्ति का ध्यान बार बार उसकी ओर दिलाना जिससे वह अपने सामर्थ्य को पहचानसके। ऊपर उठने का साहस जुटा सके। ''वास्तव में आत्मगौरव (Selfregard)'' ही व्यक्ति को, उसके व्यक्तिव को, पूर्णता तथा सुदृढ़ता प्रदान करता है।

मूलाधारः आत्म–निषेध

नैतिकता को सुग्राह्य बनाने वाला, उसे रागात्मक अस्तित्व प्रदान करने वाला, पांचवा तत्व है। आत्म निषेध (SELF ABNEGATION)। यह नितान्त सत्य, किन्तु आश्यर्चजनक तथ्य हैं कि जिन अर्थों में व्यक्ति को सुखान्वेषी कहा जाता है, ठीक उन्हीं अर्थों में वह दुखान्वेषी भी है। वह आत्म–निषेध को सहर्ष स्वीकार करता है। उसमें गौरवानुभूति करता है। बालकों का प्रत्येक आदेश को नतशिर होकर स्वीकार करना, स्वीकृति के समय आत्म–गौरव की अनुभूति करना, सामान्य जन का व्रत तथा उपवास आदि को सहर्ष स्वीकार करना उस स्वीकृति में आनन्दानुभूति करना, धर्म के नाम पर प्रचलित विभिन्न यम–नियमों का पालन करना ये सब आत्म निषेध के ही खेल है। किन्तु इन्हेंमात्र अपराध–बोध या किसी धर्म लाभ की देन नहीं कहा जा सकता। ये उनसे अलग की चीज है। निश्चय ही ये व्यक्ति और समाज के लिए हितकर सिद्ध होत हैं।

''व्यक्ति आसानी से समाज का उपयोगी अंग बन जाता है।

मूलाधारः ममत्व

नैतिकता को सुग्राह्य रूप प्रदान करने वाला छठा और अंतिम तत्व ह – ममत्व (Tender Feeling)। नैतिकता के नाम पर जिस विश्व बंधुत्व लोक–कल्याण, परोपकार तथा लोक–सेवा आदि का प्रतिपादन किया जाता है, वे ही किसी स्वार्थपरता की देन लगें, भलें ही उनके लिए व्यक्ति को घोर स्वार्थी सिद्ध किया जाता रहें, किन्तु विश्व में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं रही जिन्होंने अपनी ममता से, विश्व बंधुत्व आदि की धारणा से, धरती को जीने योग्य बनाए रखा।

निष्कर्ष

नैतिकता के नाम पर धार्मिक कर्मकाण्ड के जो रूप प्रचलित हैं, यदि उन्हें निकाल दिया जाए उनके केवल उन अंशो को ग्रहण किया जाए जो मानव–जाति को गतिएवं दिशा देने में समर्थ हैं, तो समस्या, नैतिकता के वास्तविक रूप तक पहुंचने की समस्या, उसके सुग्राह्य रूप को, उसके रागात्मक अंश को पहचानाने की समस्या, उतनी गम्भीर नहीं रह जाती, जितना उसे मान लिया जाता है। नैतिकता के नाम पर प्रचलित निषेधात्मक आदेशों के परित्याग से भी समस्या का हलढूंढना सरल हो सकता है। जीवन के सहज अर्थात उसके व्यष्टि एकांगिताओं से मुक्ति मिल सकती है। जो नैतिकता को लोकोत्तरता पर या निविड़ निवृत्तिमूलकता पर ले जा कर छोड़ती है। यदि यह सब कुछ कर लिया जाए अर्थात कर्मकाण्ड, घोर निवृत्तिमूलकता तथा लोकोत्तरता आदि से छुटकारा मिल जाए तों, निसंदेह नैतिकता का सहज, सुग्राह्य तथा रागात्मक रूप सामने आ सकेगा। ''उस स्थिति में जन्मा आदर्श न तो व्यक्ति के सामर्थ्य से अधिक ऊँचा होगा और न ही अधिक नीचा।''

शोध के क्षेत्र में स्थिति

नैतिकता और रस–यह संयोग गले नही उतरता। तो क्या वास्तव में ही नैतिकता मात्र बौद्धिक प्रत्यय है? क्या उसके मूल में रागात्मकता का कोई अंश उपस्थित नहीं रहता? क्या तथाकथित ''नीतियों में नैतिकता का समग्र रूप सिमट आता है? ये सभी प्रश्न ऐसे हैं जो अभी तक अनुत्तरित रहे हैं विशेष रूप से साहित्य के क्षेत्र में भले ही अब तक नैतिकता को लेकर लगभग 75 शोधार्थी पी0एच0डी0 (देखिए गिरिराज शरण अग्रवाल का शोध संदर्भ भाग 1,2,3) अर्जित कर चुकें हों।''

मनुष्य के आचरण का – उसके अर्न्तद्वन्द का केन्द्र अंततः नैतिक बोध ही बनता है। नैतिकता और उससे जन्म लेने वाला आक्रोश बनता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उससे संबंधित वर्णन पग पग पर मिलते है। आज आवश्यकता इस बात की है कि मानव जीवन को आधोपांत संचालित करने वाली इस शक्ति के मूलाद्गम् को, उसके विभिन्न नियामक तत्वों को, पहचाना जाए। उससे एक लाभ यह होगा कि नैतिकता के नाम पर प्रचलित अनेकानेक भ्रांतियों का निराकरण हो सकेगा, उसका सही रूप सामने आ सकेगा। इस रूप तक पहुंच पान के लिए मानव–मन न जाने कब से संघर्षरत है।

फर्श से मुतमईन नहीं, पस्त है नापसंद हैं
अर्श बहुत बुलन्द है, जौके–नजर को क्या करू।।

अंत टिप्पणी

1. जे0 एच0बेक्टलीयर
2. जानाभि धर्म न च में प्रवृतिः जानाभ्यं धर्म न च में निवृतिः। महाभारत, दुर्योधन उवाच
3. "Idealism increases in direct proportion to ones distance from the problem"- John Galsorthy.
4. हेजलिट
5. ऐथिकस इट्स ओरिजिन एंड डेवलपमेंट, क्रोपाटक्नि पृ0–30
6. वहीं, पृ0–33
7. दी सैलेक्टड वर्क्स, सी0जी0 जुंग, भाग 16, पृ0 102
8. हेनरी वानड्यूक
9. दी सेलेक्टेड वर्क्स, डी0एच0 लारेन्स, पृ0 29
10. परहित सरिस धर्म नहीं भाई पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।– रामचरित मानस, उत्तर कांड, 40/1
11. यूनिवर्सिटीज, भाग–2 सं0 11 ऐलबर्ट श्वेतजर
12. क बहुंक हौं याहि रहनि रहौंगी।– विनय पत्रिका
13. मैन, मारल्स एंड सोसाइटी, जे0सी0 फलूगल, पृ0 280
14. कबीरा गरब न कीजिए, कबहुं न हंसिये काय। अभी तो नांव समुद्र बीच, न जाने का होय ।।–कबीर
15. नहीं ऐसा जन्म बारम्बार का जानूं कछु पुण्य प्रकटे, मानुसा अवतार।– मीरा
16. सोशल साइक्लोजी, विलियम मैंगडूगल पृ0–224
17. वहीं, पृ0–61
18. वहीं, पृ0–63
19. हफीज जलंधारी।